भारत की राजधानी में जिस महान् संत का बलिदान हुआ
भारत का मंसूर—सरमद शहीद

डॉ. हरवंशलाल ओबराय

जो आंख सारे विश्व को देखती है वह बेचारी अपने आपको तत्त्वतः नहीं देख सकती। जब आंख स्वयं अपने आपको देखने के लिए मचल उठे तो बड़ी लाचारी की अवस्था आ जाती है। हमारे शरीर की सभी ज्ञानेन्द्रियां बहिर्मुखी हैं इसलिए उन इंद्रियों के पीछे जो ज्योति का अजस्र स्रोत है, जिसके प्रकाश से सभी इन्द्रियां कार्य करती हैं, उस प्रकाश के आदि स्रोत, आत्मरूप सूर्यनारायण के दर्शन ये निगोड़ी इंद्रियां कैसे कर सकती हैं? उस आत्मदेव के दर्शन तो स्वयं आत्मा के प्रकाश में किये जा सकते हैं। आत्मा को आत्मा द्वारा जानने की अलौकिक चेष्टा काव्य मंदिर में रहस्यवाद के नाम से विभूषित होती है।

विश्व के अनादि ज्ञान स्रोत वेद ने गाया है—'भूमा वै सुखम्' अर्थात् अनन्त बन जाने में ही सुख है। सभी दुःख, दारिद्र्य द्रौर्बल्य शान्त एवं ससीम से चिपके रहते हैं। सान्त जीव की अपने ही भीतर समाए हुए अनन्त ब्रह्म के लिये छटपटाहट रहस्यवाद की प्रमुख विचार सरणी है। पर वह अनन्त कहां है? उपनिषद् के ऋषियों के समान कवि गुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर गीत गाते हुए मानवता को आश्वासन देते हैं—

सीमार माझे असीम तुमि, बाजाओ आपन सूर।
आमार मध्ये तोमार प्रकाश ताइयते मधूर॥

अर्थात्— मुझ ससीम के भीतर बैठे, तुम असीम ही वंशी बजाते।
मेरे भीतर तव प्रकाश है, तब ही तो इतना मीठा है॥

उस ब्रह्म संगीत के मस्ताने गायक ने विश्व भर को यह अमर आध्यात्मिक संदेश देने के लिये इतिहास के उषाकाल में संसार के कोने-कोने में पहुंचे। भारत रत्न स्वर्गीय डॉ. भगवानदास 'केशवानंद' नाम के एक संन्यासी का वर्णन करते है जो भारत से वेदांत का अमर संदेश लेकर ईरान, इराक, अरब और फिलस्तीन

आदि देशों में घूमता रहा। इन्हीं के समान कितने ही ज्ञात-अज्ञात संत, महात्मा हाथों में वेदोपनिषद् ज्ञान की मशाल लेकर सारे संसार को ज्ञानालोक का दान देते रहे होंगे। ज्ञान दान के इस अखण्ड यज्ञ के कारण ही भारत विश्व-गुरु बनकर पूजित हुआ। उस ज्ञान यज्ञ के प्रताप से संसार के अन्यान्य देशों में भी भारतीयता के दीवाने, प्रभु के मस्ताने महापुरुष हुए। भारतीय ऋषियों के 'ब्रह्माऽस्मि' के समान 'अनलहक' गाने वाले मस्ताने वेदांती अरब, फिलस्तीन, इराक और ईरान में भी हुए, जो सूफी नाम से विश्वभर में प्रसिद्ध हुए। मंसूर हल्लाज प्रभु प्रेम के नशे में चूर हुआ। स्वयं प्रभु रूप बना हुआ गाता था 'अनलहक' अर्थात् मैं ही ब्रह्म हूं। वह अपनी कविता की कड़ी में गाता है—'मैं वही हूं जिसको प्यार करता हूं। जिसे प्यार करता हूं मैं वह ही हूं। हम एक शरीर में दो प्राणवत् हैं। यदि तू मुझे देखता है तो उसे देखता है और यदि उसे देखता है तो हम दोनों को देखता है।

978 ई. में होने वाला मंसूर का धर्म बलिदान विश्व इतिहास की एक रोमांचकारी घटना है। उसके ब्रह्मवाद को कुरान शरीफ की तौहीन बताया गया है और उसे मृत्यु का भय दिखाया गया है। किन्तु वह प्रभु का प्यारा तनिक भी डरा नहीं। उसके अंग-अंग काटे गये, उसे सूली पर चढ़ाया गया किंतु उसका 'अनलहक' का नाद मंद न हुआ।

कुछ विद्वानों का ऐसा मत है कि धर्मवीर मंसूर भारत में आये थे और यहीं के शांकर वेदांत से प्रभावित हुए थे। इस तथ्य के ऐतिहासिक प्रमाण कदाचित् उपलब्ध नहीं होते। मंसूर ने प्रत्यक्ष आंखों से चाहे भारत के दर्शन किये हों या नहीं, किंतु इतिहास साक्षी है कि उसने अपने अंतर में भारत के जिस संदेश के दर्शन किये थे उस भारत धर्म पर उसने अपना प्राण तक भी न्योछावर कर दिया।

मंसूर की स्मृति को पुनः ताजा करने वाले एक अभिनव मंसूर सत्तरहवीं शताब्दी में स्वयं भारत में आये और दैव का दुर्विपाक ऐसा हुआ कि उन्हें स्वयं भारत की राजधानी में ही भारत प्रेम के लिये शहीद होना पड़ा। वे महान सूफी संत थे सरमद शहीद। इस महान् मस्ताने फकीर का जन्म तो यहूदी जाति में हुआ था किंतु सत्य की खोज में वह दीवाना अरब में पहुंचा और यहां पर सूफियों पर होने वाले अत्याचारों को देखकर वह ईरान में आया। इस्लाम की तलवार जब ईरान के फारसी लोगों पर भी नाचने लगी, जब ईरान के सूफी संतों को भी शरह की आड़ में सताया जाने लगा, जब कट्टरपंथी मुसलमानों ने शमस तबरेज जैसे सूफी संतों को भी जीवित ही जलाया और आरे से चीरना आरंभ किया तब संत सरमद पुण्यभूमि भारत के दर्शन की चिर आकांक्षा को पूर्ण करने के लिए भारत में आये तथा वे संत कवि अपनी इस सत्यान्वेषण यात्रा का वर्णन अपने ही फारसी के गीत में करते हैं—

'सरमद कि बकूए इश्क बदनाम शुदी,
अज़दीने यहूद सूए इतलाय शुदी,
माऽलूम न शुद कि अज खुदा तो अहमद,
बरगश्ता वसूए लछमनो राम शुदी।

अर्थात्—प्रभु प्रेम गली में हे सरमद, तुम खूब अरे बदनाम हुए,
उस दीने यहूदी को तज कर तुम दीने मुसलमाँ में आए।
मालूम नहीं तब क्यो सरमद फिर अल्ला अहमद को तजकर,
तुम सत्यान्वेषण हित आये अब अन्त में लछमन राम शरण।

सच्चे प्रेमी का कोई बाहर का मजहब नहीं होता। उसका तो एक ही धर्म है—प्रेम धर्म। अरबी में सरमद शब्द का अर्थ ही है पवित्र अथवा परम पवित्र परमेश्वर। सूफी संत सरमद जब भारत में आया तो शाहजहां का राज्य अंतिम सांसों पर था। शाहजहां का सबसे बड़ा पुत्र दाराशिकोह सरमद के पावित्र्य के कारण उस संत की ओर झुका और उसे अपना गुरु बनाया। सरमद दाराशिकोह को उपनिषदों और वेदांत की ऊंची फिलासफी पढ़ाता रहता था। दाराशिकोह का उपनिषद् प्रेम तो विश्वविख्यात है। दारा ने सर्वप्रथम उपनिषदों का फारसी में अनुवाद करवाया जो यूरोप में जाकर फ्रेंच भाषा में अनूदित हुआ। उस फ्रेंच अनुवाद को देखकर जर्मनी का प्रसिद्ध दार्शनिक शोपनहावर नाच उठा और गाने लगा—उपनिषद् ही मेरे जीवन की आशा और मेरे मरण की परम शांति है। इस प्रकार सरमद और दारा के माध्यम से उपनिषदों की अमर ज्ञान ज्योति सारे संसार में पहुँची।

सरमद सच्चा वेदांती था जो पाप-पुण्य, धर्माधर्म के झगड़ों से आगे निकल गया था। वे संत कवि गाते हैं—

सरमद बजहान कुहना हमचूं ज़रफीदस्त,
आबस्त बमारहने व बजाहर बर्फीदस्त।
बाज़ीचा कुफ्रो दीन बतिप्मला बगुज़ार,
बगुज़र ज़ मकामे कि खुदा हम ख़रफीहस्त॥

अर्थात्— प्राचीन जगत में ईश्वर है बरतन की नाई-हे सरमद!
चाहे हिम सम स्थूल दिखे है पर है वारि सम तरल विरल
धर्म अधर्म के झगड़े केवल बाल बुद्धि वालों के हैं
आगे बढ़ ख़ुदी ख़ुदाई से, न जुदा खुद से तो खुदा ही है।

वेद के 'तत्त्वमसि' महावाक्य के अनुरूप ही सरमद मानव को अंतर के नारायण को खोजने का संदेश देते हैं—

अै हरज़ा चिराब गुफ़्तगू में पोई
अज़ बेहूदगीदस्त गर सुख़न में गोई।
अज़ काबा ओ दैर चश्मे उम्मीद मदार
खुद रा दर याब गर खुदा गें जोई।

अर्थात्— हे भटक रहे यात्री न पड़ तू शास्त्रार्थ के झगड़े में,
उस अकथ ब्रह्म की चर्चा सब बेहूदा है, बेफ़ायदा है।
काबे से और कलीसे से तू मुक्ति की कुछ आस न कर,
यदि खोजना है परमेश्वर को तो अपने अन्तर में खोजो॥

सभी रहस्यवादी सन्तों के समान सरमद मानव को जगाते हुए संदेश देते हैं—

सरमद एनफ्से बरीदज हस्ती न शुदी
सर गस्त शराबे हक परस्ती न शुदी।
बत दरे बग़ल व इबादते हक हयात
शरमिन्दा अजीन खुदा परस्ती न शुदी॥

अर्थात्— सरमद इक पल भी नफ़्स के पञ्जे से तू न आज़ाद हुआ,
और पा न सका इक चुल्लू भर वह जामे हककीत की मस्ती।
वह प्रभु तो तेरी बगल में है और तू ढूंढ़ता रहा है किसे मूढ,
न आज तलक इस अन्य भक्ति से शर्मिंदा भी हुआ ढीठ।

भगवान् शंकराचार्य ने घोषणा की थी कि 'जीवो ब्रह्मैव नापरः' अर्थात् जीव ब्रह्म ही है अन्य नहीं। पर दुःख की बात यही है कि अपने आपको दीन-हीन, तुच्छ एवं अज्ञानी समझता रहता है। ऐसे आत्मगौरव-शून्य जीव को ब्रह्मत्व का संदेश देते हुए कवि सरमद कहते हैं—

ए बेखबर अज़ माडने खुद हम-त्तू किताब
दरे जिल्द तो इलाही बा हिजाब।
याने ज़ तू हक पदोद वह तू असरश,
आगाह न च शीशा अज़ बूए गुलाब॥

अर्थात्— इक धर्मग्रंथ की नाई अपने अर्थों से अनभिज्ञ मनुज,
तेरी हस्ती में छिपे हुए उस विभु के सारे चमत्कार।
यथार्थ सत्य तुझमें प्रकटा पर तुझे हुई पहचान नहीं,
जैसे गुलाब जल पूर्ण पात्र को ज्ञात नहीं मुझ में क्या है?

परम पवित्र सरमद ने एकता के जाम को जी भर के पीया था। किसी कवि ने ठीक कहा है—

जिसने इक बार मये इश्के इलाही पी ली,
ऐसे मयनोश का फिर होश में आना मुश्किल।
वैसे तो आसान है कहने को अनलहक कहना,
मिसले मंसूर मगर दार पै आना मुश्किल॥
यार के कूचे की इक शर्त निराली देखी,
जाना है आसान मगर लौट के आना मुश्किल।

उसी प्रभु-प्रेम के जाम को पीने वाला सरमद गीत के माध्यम से नाच उठता है—

मुद्दते शुद कि दरीन मयकदाए वहदत तस्तीम,
शीशाए कसरत ऐन तायक़ा स लश्क बस्तीम।
तोहमते महज़ बोद ईन्का फ़ना मेगबीन्द,
ता खुदा हस्त दरी महर कि माहम हस्तीम्॥

अर्थात्— मुद्दतें गुजरी है हम बैठे प्रभु-एकता की मधुशाला में,
और अनेकता के झूठे शीशे को हमने कभी का तोड़ दिया।
इस जगती को नश्वर कहना है दोष लगाना ईश्वर पर,
रे जब से प्रभु की हस्ती है तब ही से हम उससे अभिन्न॥

प्रभु से अभिन्न हो जाने वाले सरमद को विश्वभर में अपने प्यारे की ही मूर्ति नजर आती है। उनके एक फारसी पद्य का भावानुवाद है—

दुनियाभर की सारी मूरत जो दृष्टिगोचर होती है,
सब परमेश्वर की मूरत है जो निखिल विश्व का कर्ता है।
शाश्वत सिन्धु की नवतरंग को कहते हैं सब लोग लहर,
पर वास्तव में वह लहर नहीं वह स्वयं महासागर ही है॥

सरमद के जीवन की लघु लहर महासागर की अनन्तता में लीन हो जाने के लिये परम व्याकुल हो उठी। वह निर्दोष संत दिल्ली की गलियों में अनलहक गाता हुआ निर्भय होकर नग्न ही घूमता था। उस दिगम्बर संत के अपने ही पद्य का भाव है—

हे मित्र! जगत् का ताज हमें बख्शा है जिस परमेश्वर ने,
उस ताज के मिस उसने हमको जीवनव्यापी चिंता दे दी।

जिसमें उसने कल्मष देखा पहनाए उसको धवल वसन,
बे ऐबों को उसने बच्चों की नाई नँगा ही रखा॥

सचमुच, ताज और तख्त पर तो भाई, भाई के खून का प्यासा हो उठा। इसी ताज के लिये कुटिल औरंगजेब ने अपने पिता को कारागार में डाला, बड़े भाई दाराशिकोह को दिल्ली के चांदनी चौक में हाथी के पांव के नीचे कुचलवा डाला और भाई मुराद बख्श को भी धोखे से मरवा डाला। दूसरी ओर निर्दोष बालक के समान सरमद दिल्ली की गलियों में अनलहक गाता हुआ नंगा फिर रहा था। दारा का बलिदान बड़ा अश्रुप्रेरक है किंतु औरंगजेब का अत्याचार यहीं शांत नहीं हुआ। उस कुटिल नरपिशाच ने दारा के पूज्य गुरु संत सरमद को भी कत्ल करने की ठानी। सरमद को औरंगजेब के दरबार में लाया गया। औरंगजेब ने पूछा, 'अरे काफिर! तू नंगा क्यों रहता है? उस पापी बादशाह को निस्तेज करते हुए सरमद ने उत्तर दिया, 'काफिर तो तू है जो अपने कुफ्रों को छिपाने के लिये ऊपर में सफेद लबादा पहनता है। मैं तो बालक सदृश निर्दोष हूं इसलिए मुझे कपड़े की कोई आवश्यकता नहीं।' औरंगजेब ने कहा, 'अनलहक क्यों कहता है? अपने आप को खुदा कहना खुदा की तौहीन है।' सरमद ने कहा, 'मेरे भीतर का खुदा खुद पुकार कर कहता है कि मैं खुदा हूं। मैं तो उसे कैसे रोक सकता हूं!' पापी औरंगजेब ने बहाना बनाकर सरमद को फांसी देने का हुक्म दिया। दिल्ली के लाल किले के सामने दिल्ली के लाखों नर-नारी के सम्मुख संत शिरोमणि सरमद को सूली पर चढ़ाया गया। मीरा बाई ने ठीक ही कहा—

सूली ऊपर सेज पिया की,
मिलना किस विधि-होई।

किंतु मिलने वाले सूली पर जाकर प्रीतम जी से मिल लेते हैं। उस प्रेम की गली में शीश की दक्षिणा देनी पड़ती है। सूली पर चढ़ने से पूर्व सरमद ने गद्गद वाणी में कहा, 'बहुत देर से मंसूर की आवाज धीमी पड़ चुकी थी, उस आवाज को दुबारा गुंजाने के लिये मैं पुनः उसी देश में आया हूं जिसकी यह आवाज है। मंसूर गया शमसतरबेज़ भी गया, आज सरमद भी जा रहा है। लेकिन अनलहक की अमर ध्वनि कभी मंद न पड़ेगी।' सरमद ने पुनः अनलहक का उच्च उद्घोष किया और जल्लाद की जालिम तलवार चल गई।

आज दिल्ली की जामा मस्जिद की पूर्वी सीढ़ियों के सामने सड़क के पार अमर शहीद की धूलि में सनी हुई छोटी-सी समाधि सन् 1692 के उस अमर बलिदानी का मौन पर मुखर गान गा रही है।